प्रवचन-५२, श्लोक-७२, गाथा-४८, बुधवार, श्रावण शुक्ला २, दिनांक २७-०८-१९८०

नियमसार, गाथा ४८। थोड़ा चला है।

मूल में सार तो पहली ही कलश-टीका है न? नमः समयसारायः पहला ही कलश। **स्वानुभूत्या चकासते** उस अनुभूति से प्रकाशमान हो, ऐसा है। मांगलिक का पहला ही कलश। '**नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते। चित्स्वभावाय भावाय**' आत्मा अन्तर के अनुभव से प्रकाशमान होता है। दूसरा कोई इसका उपाय नहीं है। भले दूसरी लाख बात करे, 'लाख बात की बात..' आता है न ढाल में? 'निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत द्वन्द फन्द...' द्वैतपना भी छोड़ो। 'निज आतम उर ध्याओ।' अन्दर निज आत्मा परमात्मस्वरूप से विराजमान है, उसे ध्याओ, उसका ध्यान करो। उसका लक्ष्य करके उसमें रमो। यह पूरे बारह अंग का कहने का सार यह है।

वह यहाँ कहते हैं कि **जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,...** सिद्ध में पाँच शरीर के प्रपंच नहीं हैं। आहाहा! शरीर को प्रपंच कहा है। **निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** नारकी और नारकी की गति तथा मनुष्यगति, उसका त्याग और उसका ग्रहण, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! परवस्तु का त्याग-ग्रहण तो इसके स्वरूप में है ही नहीं। रजकण से लेकर वैमानिकदेव की ऋद्धि या दुनिया की कोई भी सम्पत्ति नहीं। अपने अतिरिक्त किसी परचीज़ के ग्रहण और त्याग रहित इसका स्वभाव है। आहाहा! कठिन बात! अनन्त में रहना और अनन्त के ग्रहण-त्यागरहित है। अनन्त पदार्थ में रहता है, क्षेत्र एक। (वास्तव में तो) एक क्षेत्र भी नहीं, क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न है। आकाश की अपेक्षा से एक क्षेत्र कहा जाता है। आहाहा! भिन्न-भिन्न चीज़। अपने में पर का कुछ नहीं है।

यह यहाँ कहते हैं। **त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,...** आहाहा!

राग का त्याग और **स्वरूप का ग्रहण, इसका भी उसमें अभाव है।** आहाहा! गजब बात है। यह वस्तु ली और मैंने छोड़ी, यह तो इसकी वस्तु में (आत्मा में) ही नहीं। आत्मा के अतिरिक्त अनन्त चीज़ें, उन्हें आत्मा स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता और ग्रहण-त्याग करे, ऐसा तो उसमें है ही नहीं। आहाहा! गजब बात! अनन्त पदार्थों के मध्य में रहा होने पर भी परचीज़ को स्पर्श नहीं करता और पर के ग्रहण-त्याग तो इसमें है ही नहीं। ऐसी त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है। तदुपरान्त **राग का त्याग और स्वरूप का ग्रहण वह भी यथार्थ में नहीं है।** आहाहा! गजब बात! चीज़ कहाँ पड़ी है और परिभ्रमण कहाँ कर रहा है!

यहाँ यह कहते हैं। **नर-नारकादि पर्यायों के...** देव आदि पर्यायों के **त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,...** आहाहा! गतिमात्र का ग्रहण और त्याग। जो गति है, वह पर्याय में, हों! गति अर्थात् यह (शरीर) नहीं। यह मनुष्यगति नहीं; यह कहीं मनुष्यगति नहीं। यह तो मनुष्य शरीर है। यह तो पारिणामिकभाव से जड़ चीज़ स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है। इसकी तो यहाँ बात भी नहीं है। इसके ग्रहण-त्याग की बात भी नहीं है। **अन्तर में राग और द्वेष का त्याग और स्वरूप का ग्रहण, इससे भी प्रभु शून्य है।** आहाहा! जैसे सिद्ध में त्याग-ग्रहण का अभाव है, ऐसा ही भगवान आत्मा... आहाहा! विकार का त्याग और निर्विकारी चीज़ का ग्रहण, (ऐसा भी वास्तव में नहीं है)। **वह चीज़ सदा ग्रहण हुई ही है। सदा ग्रहण ही है।** ग्रहण और त्याग उसमें नहीं है। ग्रहण-त्याग उसमें नहीं है। आहाहा! गजब बात!

जैनदर्शन के दो सिद्धान्त सूक्ष्म हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! एक पदार्थ किसी भी दूसरे पदार्थ को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! इस शरीर को आत्मा स्पर्श नहीं करता। आत्मा, शरीर को स्पर्श नहीं करता और क्रमबद्ध। द्रव्य में क्रमसर, क्रमसर, क्रमवर्ती, क्रमबद्ध, क्रमनियमित सब एकार्थ है। एक के बाद एक क्रमबद्धपर्याय है परन्तु उसकी दृष्टि—क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञायकभाव पर दृष्टि है। इस कारण ज्ञायकभाव पर के ग्रहण-त्याग से शून्य है। आहाहा! ऐसी बात।

यहाँ तो कन्दमूल नहीं खाना, हरितकाय नहीं खाना, व्रत पालना, छह परवी ब्रह्मचर्य पालना, अमुक नहीं खाना... यह सब पर की बातें हैं, बापू! खाये कौन? पीये कौन? स्पर्श नहीं करता, उसे खाये-पीये कौन? आहाहा! परन्तु यह बात अन्तर में वास्तविक रीति से,

राग से पृथक् हुए बिना यथार्थरूप से अन्दर में नहीं बैठती। आहाहा! भले चाहे जितना राग हो, प्रशस्तराग हो, परन्तु उस राग से पृथक् हुए बिना चैतन्यस्वरूप भगवान, राग के ग्रहण-त्यागरहित, ऐसी चीज़ है, उसका भान हुए बिना, उसका अनुभव हुए बिना सब शून्य है। आहाहा! यह यहाँ कहा है। ग्रहण-त्याग से शून्य।

परमतत्त्व में स्थित... परमतत्त्व भगवान में स्थित **सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्ध-स्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ...** है। आहाहा! वह तो कारणपरमात्मा को जानने में समर्थ है और प्रगट पर्याय को जानने में एकसाथ समर्थ है। जानने का स्वभाव है, वह किसे नहीं जाने? और उसे अवधि क्या? कि भाई! दो समय या तीन समय लगे, ऐसी अवधि नहीं है। एक ही समय में स्व और पर को जाने। अपने में रहकर, पर को स्पर्श किये बिना, अपने क्षेत्र में रहकर... अपने क्षेत्र में जो शरीर है, वहाँ आत्मा है, परन्तु वह क्षेत्र भिन्न है। शरीर का क्षेत्र भिन्न है, आत्मा का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है।

ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं—ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय स्वरूप है क्योंकि पर को कभी स्पर्शित ही नहीं हुआ है। **समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं...** यह कैसे होगा? कैसे होगा? ऐसे संशय की गन्ध नहीं है। ऐसा प्रभु चैतन्य नि:सन्देह, निष्कारण, पर के कारण बिना अपने निज कारणपरमात्मा से साबित-सिद्ध है। आहाहा! उसकी दृष्टि करना, उसका ज्ञान करना, उसमें लीनता करना, यह पूरे बारह अंग का सार है, बाकी सब बाहर की बातें, धमाल.. धमाल..। आहाहा! बाहर में ऐसा लगे, पाँच-दस लाख रुपये खर्च करे, बड़ी धमाल शोभायात्रा निकाले और मानो लोगों को ऐसा... नारियल न, चाँदी के नारियल सिर पर चढ़ाकर सैकड़ों महिलाएँ (निकले)।... ओहोहो! क्या है? प्रभु! राग का त्याग-ग्रहण स्वरूप में नहीं तो इस बाहर की चीज़ का ग्रहण-त्याग... आहाहा! नीचे बर्तन पड़ा है, उसे उठाना या रखना, वह तो आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त कोई चीज़ अपने से दूर हो या नजदीक हो, परन्तु उसने कभी भी ग्रहण-त्याग किया ही नहीं। आहाहा! पूरे दिन प्रवृत्ति (करे), उसमें कहे यह अधिकार नहीं। चन्दुभाई! पूरे दिन प्रवृत्ति में तुम्हारा अधिकार नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं—ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,... आहाहा! यह राग था और राग मैंने छोड़ा, यह संशय भी दूर हो गया।

आहाहा! मुझमें राग है और मैंने राग छोड़ा, ऐसा संशय है नहीं। वस्तु में ऐसा संशय नहीं है। आहाहा!

मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के... आहाहा! मलजनित। इन क्षयोपशम और उपशम को सबको मलजनक कहते हैं क्योंकि जिसमें कर्म की अपेक्षा लागू पड़ती है, उसे यहाँ कर्मजनित कहने में आया है। आहाहा! भगवान! अपने स्वरूप में पर की कोई अपेक्षा नहीं कि कर्म का क्षय हुआ, इसलिए आत्मा को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो पूरे दिन कहे, चार घातिकर्म का नाश होवे तो केवलज्ञान होता है। घातिकर्म ने रोका है। आत्मा का ज्ञान घातिकर्म ने घात किया है। आहाहा! घात भी किया नहीं और छोड़ा भी नहीं। आहाहा! ये चार घातिकर्म आत्मा ने किये नहीं और उनका नाश भी किया नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान भिन्न, निर्लेप, अन्दर भिन्नस्वरूप पड़ा है। आहाहा!

मलजनक क्षायोपशमिकादि... जो परभाव पर्याय में है, उनके आश्रय से तो मल उत्पन्न होगा। आहाहा! पर का आश्रय तो एक ओर रहा। शरीर-वाणी-मन, देव-गुरु-शास्त्र तो पर रहे, परन्तु अपनी पर्याय में विभावभाव है, वह भी मलजनित है। आहाहा! कर्म की अपेक्षा लागू पड़ती है। भले उदय में विद्यमान निमित्त है, उपशम आदि में निमित्त का अभाव, इतनी अपेक्षा से वे मलजनक हैं। आहाहा! भगवान में इतनी अपेक्षा लगाना, वह भी एक दोष है, कहते हैं। आहाहा! अब ऐसा मार्ग! यहाँ कहे एकेन्द्रिय की दया पालो और हरितकाय का घात मत करो, हरितकाय को खाओ नहीं, उसमें धर्म हो गया। आहाहा! मिथ्यात्व का पोषण है। परवस्तु का क्षण में और पल में त्याग-ग्रहण किया, ऐसी बुद्धि में मिथ्यात्व (अर्थात्) सत्स्वरूप भगवान से विरुद्ध असत्य मिथ्या अभिप्राय का पोषण होता है। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त किसी परचीज़ का मैं कर्ता हूँ और मुझमें है, इसलिए छोड़ता हूँ। है नहीं, उसमें छोड़ूँ कहाँ से आया? आहाहा! तेरी चीज़ में वह है ही नहीं न! कर्म को छोड़ूँ, यह भी तुझमें नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो **क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण...** यहाँ तो चारों भावों को मलिनभाव कहा। चाहे—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। चारों को आवरण संयुक्त कहा, चार से आत्मा को अगोचर कहा। पहले (३८ गाथा में) आ गया है। चार भाव से आत्मा अगम्य है। उसका अर्थ कि चार भाव के आश्रय से वह जानने में नहीं

आता। चार भाव आवरण संयुक्त हैं क्योंकि एक में—उदय में निमित्त है, तीन में निमित्त (के अभाव) की अपेक्षा है। वह वस्तु नहीं, वस्तु निरपेक्ष है। निरपेक्ष को किसी की अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। आहाहा! उस भगवान का पता लेकर.. आहाहा! उसमें स्थान जमाकर, उसमें धाम जमाकर लीन होना, वह वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! बाकी सब बातें हैं।

यहाँ तो कहा, **क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण 'निर्मल' हैं...** चार विभाव-स्वभाव उसमें है ही नहीं। क्षायिक और क्षयोपशमभाव भी नहीं। पर्याय है न? पर्याय, द्रव्य में कहाँ है? पर्याय जो है... शरीर, कर्म, मन और वाणी तो दूर क्षेत्र, दूर द्रव्य, दूर काल, दूर भाव-ऐसे वर्तते हैं। आत्मा के अतिरिक्त मन, वाणी, देह / शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, स्वयं के कारण से वर्तते हैं। **स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, मकान, वह संसार नहीं है। संसार आत्मा की पर्याय में 'परवस्तु मेरी, मैं ग्रहण कर सकता हूँ'—यह मिथ्यात्वभाव संसार है।** पर्याय को छोड़कर कहीं मिथ्यात्व रहता नहीं है। आहाहा! **आत्मा का संसार, आत्मा की पर्याय से एक समय भी दूर नहीं रहता।** आहाहा!

'निर्मल' हैं और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के... आहाहा! जड़कर्म और रागादिभाव के **अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं;...** आहाहा! विशुद्ध तो शुभभाव को भी कहते हैं। यहाँ वि-शुद्ध। शुद्ध में विशुद्ध। इस प्रकार से आत्मा शुद्ध है। आहाहा! उसे सबेरे अधसेर चाय की उकाली मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! उसमें भुजिया और चाय सबेरे खाने को मिले... आहाहा!

मुमुक्षु : वे इसे स्पर्श ही कहाँ करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है न? मानता है। स्पर्श कहाँ करते है? आहाहा!

पर को स्पर्श नहीं करता, यह तीर्थंकर की बात, इसके घर की है। दुनिया में केवलज्ञानी के अतिरिक्त परमात्मा वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव के अतिरिक्त ऐसा किसी ने कहीं कहा नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, ऐसी बात भगवान के अतिरिक्त दूसरे किसी ने कही नहीं है। वाड़ा में भी यह बात नहीं चलती। आहाहा! वाड़ा में भी यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो.. आहाहा! एक यह और एक क्रमबद्ध। आहाहा! समय-समय में पर्याय क्रमसर, क्रमबद्ध, क्रमनियमित, जिस नियम

से आनेवाली है, वैसी पर्याय आती है। उसकी दृष्टि द्रव्य पर होनी चाहिए। आहाहा! यह शब्द ही सुनने में आया नहीं। सम्प्रदाय में तो यह भी नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं '**विशुद्धात्मा**' उसे किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! दया-दान का राग करना, वह तो आत्मा में नहीं परन्तु दया-दान का त्याग करना, वह भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! गजब है। प्रभु तो चैतन्यबिम्ब है। किसका त्याग करे? किसे ग्रहण करे? कभी किसी को स्पर्श भी नहीं किया, चुम्बन भी नहीं किया.. आहाहा! तो किसका त्याग-ग्रहण करे? ऐसी चीज़ पर दृष्टि गये बिना मिथ्यात्व का, मल का नाश नहीं होता। आहाहा! बाहर से भले कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को छोड़े, सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र को माने, वह तो नौवें ग्रैवेयक गये हुए अभव्य भी मानते हैं। नौवें ग्रैवेयक में गया, तब अभव्य भी देव-गुरु-शास्त्र को मानता था। स्व-पर (भेदज्ञान) नहीं। आहाहा! वह श्रद्धा भी कोई आत्मज्ञान नहीं है। पर की श्रद्धा और पर का ज्ञान कहीं आत्मज्ञान नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से**... आहाहा! स्पष्ट नहीं किया। क्यों नहीं किया? **किसी नय के...** आहाहा! **किसी नय के बल से (किसी नय से) शुद्ध है।** आहाहा! **किसी नय से शुद्ध है। वह नय ही नय है - शुद्धनय, वही नय है।** आहाहा! अपने को परमात्मस्वरूप से पकड़ना, वही नय, नय है। व्यवहारनय तुच्छ है। वह व्यवहारनय, उसका विषय है परन्तु बिल्कुल आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! भाषा कैसी है सब? कि **किसी नय के बल से...** किसी नय के बल से। वास्तविक जिसे नय कहते हैं, उस शुद्धनय को नय कहते हैं। इसीलिए किसी नय से (ऐसा) कहा है। अशुद्ध और व्यवहारनय, वह नय ही नहीं है; कथनमात्र बात है। आहाहा!

किसी नय के बल से (किसी नय से) शुद्ध है। किसी नय से अर्थात् **अपने स्वरूप की दृष्टि से शुद्ध ही है। उसे और नय लागू करना या यह करना, वह तो किसी नय (अर्थात्) वह नय।** त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु का सम्यग्दर्शन प्रगट करो, जिससे जन्म-मरण का अन्त आता है। इसके बिना लाख क्रियाकाण्ड करे, रात्रिभोजन त्याग करे, आहार त्याग करे, महीने-महीने के अपवास करे, उसमें कुछ धर्म नहीं है। आहाहा! करोड़ों रुपये खर्च करके लाख मन्दिर बनावे। बाहर में धमाल करे। ओहोहो! अमुक व्यक्ति ने पाँच लाख लिखाये, अमुक ने दस लाख लिखाये। वहाँ लोगों को रोमांच हो जाता है। आहाहा! परन्तु क्या है प्रभु! पाँच लाख, दस लाख और करोड़ तथा दो करोड़, वह तो

धूल है। उसे तो कभी आत्मा ने स्पर्श भी नहीं किया है। आत्मा तो उस चीज़ को छूता भी नहीं है न, तो उसने छोड़ा कहाँ से ? तो उसने दिया, ऐसा कैसे आया ? उस चीज़ को स्पर्श नहीं करता तो उस चीज़ को दे, (यह कहाँ रहा) ? आहाहा! वह उसके कारण से जाती है, आती है। ऐसी कठोर चीज़ है, प्रभु! वीतराग का मार्ग बहुत... कोई कहे कि परन्तु व्यवहारनय है नहीं ? है न, सब कथनमात्र है। आहाहा! कहनेमात्र है, जाननेमात्र है। कहनेमात्र का अर्थ जाननेमात्र है। आदरनेमात्र नहीं। आदरने (योग्य) त्रिकाली ज्ञायकभाव अत्यन्त शुद्ध... आहाहा!

श्लोक-७२

(अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-)

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्।।७२।।

(वीरछन्द)

मिथ्यादृष्टि को सदैव ये शुद्ध-अशुद्ध विकल्प रहें।
ज्ञानी को तो सदा कार्य अरु कारणत्व भी शुद्ध रहें॥
परमागम का अतुल अर्थ जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जाने।
सारासार विचारक धी से, उनको हम वन्दन करते॥७२॥

श्लोकार्थः—शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना * वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वन्दन करते हैं॥७२॥

* विकल्पना=विपरीत कल्पना; मिथ्यामान्यता; अनिश्चय, शंका; भेद करना।

श्लोक-७२ पर प्रवचन

अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम् ।।७२।।

आहाहा! यह मुनि की भाषा। **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** आहाहा! एकरूप भगवान त्रिकाली, उसमें शुद्ध और अशुद्ध, ऐसे भेद पर्यायदृष्टि जिसे रहती है... आहाहा! वह मूढ़ जीव है। आहाहा! क्योंकि शुद्ध, अशुद्ध की अपेक्षा रखता है। यह शुद्ध था, शुद्ध हुआ, तो अशुद्ध की अपेक्षा रह गयी। अशुद्ध का त्याग किया तो अशुद्ध का त्याग और शुद्ध का ग्रहण (हुआ) आहाहा! वह **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** ***विकल्पना=विपरीत कल्पना; मिथ्यामान्यता; अनिश्चय, शंका; भेद करना।*** आहाहा! बहुत कठोर बात, बापू! ऐसी मान्यता **मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** आहाहा! एक समय भी पर की कर्ताबुद्धि और राग की त्यागबुद्धि बिना इसकी दृष्टि एक समय भी रही नहीं। आहाहा! पर की कर्ताबुद्धि, और रागादि का ग्रहण-त्याग, ऐसी बुद्धि मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! कहा? कि **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** शुद्ध-अशुद्ध जो पर्याय के भेद.. आहाहा! **वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** आहाहा! प्रत्येक समय ज्ञायकभाव का (दृष्टि में) अभाव होने से परसन्मुख की चीज़ में ग्रहण-त्याग की बुद्धि, **राग मेरा तो है नहीं ऐसा त्याग, ऐसी बुद्धि पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि को होती है।** आहाहा! कठोर काम।

मुमुक्षु : अधिक भाग ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया में यही है। दुनिया किसे कहे? आहाहा!

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... विपरीत कल्पना। अरे! शुद्ध, यह विपरीत कल्पना! आहाहा! यह शुद्ध पर्याय की अपेक्षा से। यह अधिकार शुद्धभाव अधिकार है।

यह शुद्धभाव, पर्याय की बात नहीं है। यह शुद्धभाव ध्रुव का अधिकार है। यह शुद्धभाव जो है, वह ध्रुव का अधिकार है। शुद्धभाव अर्थात् यह पर्याय का अधिकार नहीं है। आहाहा! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** ऐसी पर्यायबुद्धि हुई। आहाहा! कठिन काम है, प्रभु! बात कान में पड़ना मुश्किल पड़े। आहाहा! उसमें अन्दर चले जाना, चैतन्य में अन्दर चले जाना। आहाहा! जहाँ कोई नहीं, जिसमें पर्याय नहीं, भेद नहीं। शुद्ध-अशुद्ध का भेद जिसमें है ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ में न रहना, वह मिथ्यादृष्टि है। **सम्यग्दृष्टि को तो...** आहाहा! इसमें भी सदा ही प्रयोग किया है। उसमें भी 'सदा' ही प्रयोग किया है।

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;... आहाहा! क्षण में और पल में पर का त्याग-ग्रहण, यह बुद्धि अज्ञानी को सदा-निरन्तर रहती है। जो आत्मा, पर के त्याग-ग्रहण रहित है, परन्तु यह त्याग-ग्रहण की बुद्धि अज्ञानी को सदा ही रहती है। आहाहा! कहो, राजपाट छोड़े, कुटुम्ब-कबीला छोड़े तो संसार छोड़ा? प्रभु! उसे संसार नहीं कहते। संसार तो एक मलिन अवस्था है। मलिन अवस्था द्रव्य के अतिरिक्त कहीं नहीं रहती। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार-धन्धा, वह संसार नहीं है; वह तो परचीज़ है। आहाहा! पर को और आत्मा को स्पर्श नहीं है। आहाहा! कठिन काम है। एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता और ये सब पिण्ड पड़े हैं, परमाणु के पिण्ड / जत्था पड़े हैं, उनमें एक-एक परमाणु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से भिन्न काम करता है। दूसरे परमाणु के साथ मिलान नहीं है। उसका क्षेत्र भिन्न, द्रव्य भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न। आहाहा!

प्रत्येक परमाणु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न हैं, तो तू तो आत्मा है न, प्रभु! वह तो जड़ है। जड़ के भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न। स्कन्धरूप से देखने में आते हैं, तथापि अन्दर के परमाणु... ८७ गाथा में कहा है कि स्कन्ध पिण्ड में रहने पर भी परमाणु अपनी पर्याय को करते हैं, पर को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! स्कन्ध में रहे हुए परमाणु अपना काम करते हैं। अपनी पर्याय परिणमित करते हैं। पर-परमाणु के कारण से अपने में कुछ हुआ, दो गुण स्निग्धता से चार गुण स्निग्धता हुई, वह चार गुण स्निग्धता हुई। वह चार गुण स्निग्धता परमाणु के स्कन्ध में हुई, यह बात अत्यन्त झूठ है। आहाहा! ऐसी बात कान में पड़ना मुश्किल है। अन्दर जँचना (तो महामुश्किल है)। आहाहा!

जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! है ? **तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** आहाहा! कारणतत्त्व त्रिकाली शुद्ध है, कार्यतत्त्व वर्तमान शुद्ध। केवलज्ञान, वह शुद्ध है और उसका कारणतत्त्व मोक्ष का मार्ग, वह भी शुद्ध ही है। आहाहा! परन्तु फिर भी वह व्यवहारनय का विषय है। मोक्ष का मार्ग और मोक्ष, वह पर्यायनय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! यहाँ तक ले जाना! भटकने के काम के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। भटकने के काम के कारण... आहाहा! यह वाजिंत्र बजता है, उस वाजिंत्र में हाथ छूता है; इसलिए बजता है, ऐसा नहीं है। उसे हाथ छूता ही नहीं। कौन माने ? पागल जैसा लगे। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को तो... सत्यदृष्टिवन्त को **सदा कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** आहाहा! त्रिकाली शुद्ध है और पर्याय भी शुद्ध ही है। पूर्ण पर्याय सिद्ध, वह भी शुद्ध ही है। आहाहा! अशुद्ध था और अशुद्ध टला, ऐसा भी नहीं है। इतनी अपेक्षा भी नहीं है। वह तो त्रिकाल... ऐसा कहा न ? **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों सदा शुद्ध हैं।** ऐसा आया न ? सदा शुद्ध है। आहाहा! पहले अशुद्ध था और अशुद्धता टाली, 'ऐसा नहीं' है या नहीं अन्दर ? **सदा...** दोनों में। मिथ्यादृष्टि में भी 'सदा' (शब्द) है, सम्यग्दृष्टि में 'सदा' है। ओहोहो!

कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। प्रभु! त्रिकाल भी शुद्ध है और उसकी पर्याय भी शुद्ध ही है। आहाहा! अशुद्ध को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। पर्याय में है परन्तु द्रव्य स्पर्श नहीं करता। द्रव्य तो शुद्धाशुद्धपर्याय से रहित है। आहाहा! **इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को...** आहाहा! ऐसा कौन माने ? ऐसा कौन माने ? **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिनेश्वरदेव अरिहन्त परमात्मा वर्तमान में मौजूद हैं। महाविदेह में वर्तमान मौजूद हैं और महाविदेह में भी यह आत्मा अनन्त बार गया। भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया परन्तु स्वयं स्वसन्मुख दृष्टि नहीं की। आहाहा! पर की दृष्टि रही कि भगवान ऐसे हैं... भगवान ऐसे हैं.. भगवान ऐसे हैं और उनकी दृष्टि करने से लाभ होगा। यह मिथ्यादृष्टि है। अर..र..! यह गजब बात! कठिन लगे। सम्प्रदाय में तो यह चलता नहीं कि भगवान पंच परमेष्ठी का स्मरण, वह अशुद्ध, मलिन और बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली...** यह क्या कहा? भगवान की वाणी जो परमागम है, 'ॐकारध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे', 'ॐकारध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे...' आहाहा! 'रचि आगम भविक जीव संशय निवारै।' आहाहा! वह यहाँ कहे, इस परमागम का सार। यह परमागम का सार है। जो आगम का ज्ञान करके अशुद्धता से लाभ होता है और अशुद्धता मुझमें है, यह पर्यायबुद्धि रहे, उसने परमागम का सार देखा नहीं है। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में एक भवतारी इन्द्र जिनकी सभा में जाते हैं। एक भवतारी इन्द्र सभा में जाता है। इन्द्र किसे कहते हैं? बापू! बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य देव, ऐसे बत्तीस लाख विमान का स्वामी। बिल्कुल माने नहीं (कि) यह मेरी चीज़ है और मैं स्वामी हूँ, ऐसा बिल्कुल माने नहीं। आहाहा! वह भगवान के समवसरण में सुनने जाता है।

तब कोई ऐसा कहे, पर से कुछ होता नहीं तो सुनने किसलिए जाना? आहाहा! समझ में आया? वे वढ़वाणवाले केशूभाई हैं न? उन्हें किसी ने प्रश्न किया। केशूभाई बुद्धिवाला व्यक्ति है, उनसे दूसरे ने प्रश्न किया कि तुम निमित्त को मानते नहीं और निमित्त के पास बारम्बार जाते हो, यह तो विरुद्ध हो गया। निमित्त से होता नहीं, ऐसा मानो और बारम्बार सोनगढ़ जाते हो। तब निमित्त से लाभ हुए बिना किस प्रकार जाते हो? (केशूभाई ने) कहा कि प्रभु! हम निमित्त से नहीं होता, यह दृढ़ करने के लिये जाते हैं। आहाहा! वढ़वाणवाले केशूभाई है न?

मुमुक्षु : यह दृढ़ता तो निमित्त कराता है न? कि निमित्त से कुछ नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं.. बिल्कुल नहीं। निमित्त छूता नहीं, निमित्त की वाणी छूती नहीं। निमित्त की वाणी अन्दर पड़े तो सम्यग्ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है, बापू! वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ की वाणी कहीं नहीं है। आहाहा! विपरीत वाणी में जगत को चढ़ा दिया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वह **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के...** भाषा क्या कहते हैं? परमागम में से... आहाहा!

अतुल अर्थ को सारासार के... आहाहा! चतुर पुरुष, ज्ञानी (पुरुष) इन परमागम में से **अतुल अर्थ को सारासार के...** निकालकर। आहाहा! परमागम में से ऐसा निकाला। परमागम ने ऐसा कहा, आहाहा! परमागम ने ऐसा कहा तो... ऐसा लिया न? आहाहा! **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! जो आगम सुनकर अन्तर के निज अवलम्बन में लाभ माने, वह आगम का सार है। बारह अंग का सार अनुभूति करना, वह है। कोई बारह अंग पढ़ा, इसलिए विशेष है, ऐसा नहीं है। यह लिखा है। बारह अंग पढ़ा है, वह कोई विशेष है, ऐसा नहीं है। वह तो विकल्प है।

अन्दर में भगवान पूर्णानन्द की सत्ता, अनादि एकरूप सत्ता रखनेवाला प्रभु! उसे जिसने पकड़ लिया है, वह आगम के सम्पूर्ण सार में से यह सार निकाल लिया है। आगम में यह सार कहना था। आहाहा! शास्त्र में यह कहना था। कोई कहे, भगवान की वाणी ऐसी है, वैसी है... सब है, प्रभु! वीतराग की वाणी में सार-असार के विचारवाले कि यह असार है और (यह) सार है, उसके विचारवाली... आहाहा! **सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! सुन्दर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान द्वारा। ओहोहो! बारह अंग में लाखों-करोड़ों बात आवे। कथानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग की अनेक बातें आवे, परन्तु **सारासार के विचारवाली...** सुधर्मी उसमें से सार निकालता है कि परमागम ऐसा कहता है... आहाहा! कि स्वयं आत्मा शुद्ध है, त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा कहता है। सुनकर चाहे जितना सुने, परन्तु भगवान अशुद्धता से टलकर शुद्धता (प्रगटे), इतनी अपेक्षा भी उसे नहीं है। आहाहा! वह तो एक भगवान पूर्णानन्द का नाथ एकरूप शुद्ध त्रिकाल है। गृहीत मिथ्यात्व और अगृहीत मिथ्यात्व का सेवन करता है, तो भी द्रव्य में कुछ नहीं है। द्रव्य तो शुद्ध भगवान परमेश्वर है। आहाहा! आगम में से यह निकाला। परमागम में से यह निकाला। इसका अर्थ कि परमागम ने यह कहा है। आहाहा!

परमागम। अकेला आगम शब्द प्रयोग नहीं किया। परमागम—ऐसा कहा न? दिगम्बर शास्त्र, वे परमागम हैं। प्रभु (अन्य जीवों) को दुःख लगे, क्या करें? वीतराग के परमागम तो दिगम्बर शास्त्र, वे परमागम हैं। बाकी दूसरे कहें, वे परमागम नहीं हैं। आहाहा! बहुत दुःख लगे, प्रभु! तू कौन है? **तुझे अशुद्धता कहना, अशुद्धता टली—ऐसा कहना, वह तुझे शोभता नहीं। आहाहा! प्रभु! तुझे अशुद्धता थी और टली, ऐसा**

कहना शोभता नहीं, नाथ! आहाहा! उससे दूसरी विरुद्ध बातें करनेवाले सम्प्रदाय के नाम से चलावें, इतने व्रत करे तो ऐसा हो, अट्ठम करे तो ऐसा हो, उसमें अट्ठम पर एक पोसरी चढ़ावे तो पच्चीस उपवास का लाभ हो। आहाहा! ऐसा जो चला दिया, उसने आगम का सार जाना नहीं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ने कहे हुए आगम, त्रिलोकनाथ ने कहे हुए दिव्यध्वनि आगम, वहाँ सारासार के विचार करनेवाली **सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** स्वयं जानता है। मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ, ऐसा स्वयं जानता है। मुझमें अशुद्धता थी और अशुद्धता मिटी, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात! आहाहा! कितनी बात ली?

देव ने ऐसा कहा;

वाणी में भी यह कहा;

वाणी में से सारासार का विचार निकालकर यह निकाला।

ये तीन बातें हुई न? देव-सर्वज्ञ की वाणी में भी यह सार कहा—शुद्ध चैतन्यमूर्ति। और शुद्ध-अशुद्ध की बात छोड़ दे। आहाहा! भगवान ने ऐसा कहा, वाणी में ऐसा आया और सम्यग्दृष्टि में ऐसा निकाला। आहाहा! आगम में से यह बात निकाली, वह आगम को जानता है। दूसरे प्रकार से निकाले तो वह आगम को नहीं जानता, भगवान को नहीं जानता। (जो) आगम को जानता है, वह भगवान को जानता है और आत्मा को जानता है। पर का घात नहीं करना, यह ज्ञानी का ज्ञानसार है। '**एवं तु नाणीनो सारं जं न हिंसा परं**' '**अहिंसा स्वयं चेव**' पर को नहीं मारना, यह सिद्धान्त का सार '**एता वतं विआणीआ**' इतना जाने उसने सब जाना। आहाहा!

सम्प्रदाय में २१-२१ वर्ष रहे। यह शब्द कान में पड़ा नहीं था। हमारे, सम्प्रदाय के गुरु बहुत शान्त थे। कषाय मन्द थी 'हीरा अेटला हीर, बाकी सूतरना फालका' ऐसी उनकी उपमा थी। परन्तु यह बात कान में नहीं पड़ी थी। आहाहा! उनकी अपेक्षा तो इन भाग्यशाली जीवों को कान में पड़ी है। आहाहा! यह बात कान में नहीं पड़ी। देखो तो शान्त-शान्त। ४६ वर्ष की दीक्षा, बारह वर्ष की उम्र में ली हुई। ५८ वर्ष में जंगल में देह छूट गयी। श्वास चढ़ा। आहाहा! परन्तु वे जब व्याख्यान में ऐसा कहे कि '**एवं तु नाणीना**

सारं जं न हिणइ परं' पर को नहीं मारना, यह ज्ञानी के ज्ञान का सार है, ऐसा कहते थे। **'एवं तु नाणीना सारं जं न हिणइ परं'** आहाहा! अहिंसा, संयम है। वह पर को नहीं मारना, यह अहिंसा सिद्धान्त का सार है। **'एता वतं विआणीआ'** आहाहा! इतना जाने, उसने सब जाना - ऐसा कहते थे। बहुत नरम थे, नरम थे। उद्धत नहीं, घमण्ड नहीं। सभा में दो-दो, तीन-तीन हजार लोग आते थे। राजकोट में तो बहुत नाम था। शान्त.. शान्त..। अरे रे! भगवान! यह वाणी कान में नहीं पड़ी। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू शुद्ध-अशुद्ध के भेद को छोड़ दे। तू त्रिकाली शुद्ध-स्वरूप ही है। आगम में ऐसा कहा है, मैंने ऐसा कहा और तू भी ऐसा निकाल। आहाहा! **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! अपनी कल्पना द्वारा नहीं परन्तु आगम में, भगवान की वाणी में जो कहा है, उसकी **सुन्दर बुद्धि द्वारा...** सार निकालकर **सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वन्दन करते हैं।** स्वयं जानता है कि हम तो अनादि-अनन्त चैतन्यमूर्ति में से हटे नहीं, हटे नहीं। मेरे द्रव्य में कभी अशुद्धता आयी नहीं। अशुद्धता द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। अरे! शुद्धता द्रव्य को स्पर्श नहीं करती, प्रभु! आहाहा! भगवान ने ऐसा कहा, वाणी में ऐसा आया। आहाहा! सुन्दर बुद्धिवाले ने उसमें से यह निकाला। सुन्दर बुद्धिवाले ने ऐसा निकाला। आहाहा! बहुत सरस बात आयी। आहाहा!

स्वयं जानता है,... वह सम्यग्दृष्टि किसी पर की अपेक्षा बिना स्वयं जानता है। आहाहा! गुरु और शास्त्र की अपेक्षा (बिना) उसमें से निकाला, परन्तु वह स्वयं निकाला है। आहाहा! **उसे हम वन्दन करते हैं।** लो, बात पूरी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)